[श्री द्वा. ग्र. माला - पुष्प २५]

" चतुर्भुजदास "

[जीवन-झांकी तथा पद-संग्रह]

सम्पादक :—

गो. श्री व्रजभूषण शर्मा

पो. कण्ठमणि शास्त्री

क. श्री गोकुलानन्द शर्मा

प्रकाशक :—

विद्या-विभाग

[अष्टछाप-स्मारक समिति]

कांकरोली.

प्रकाशक :—
पो० कण्ठमणि शास्त्री
संचालक :—
विद्या-विभाग, कांकरोली.
[राजस्थान]

प्र. संस्करण १०००
विजयादशमी २०१४
ता० ३-१०-१९५७
मूल्य ३)

मुद्रक :—
चन्द्रकान्त भूषणदासजी साधु
चेतन प्रकाशन मन्दिर, (प्रि. प्रेस),
' चेतनधाम ' सीयाबाग,
बडोदा. (गुजरात)

सम्पादकीय – किञ्चित्

आयोजन—

दैवी सम्पत्ति के अनर्घरत्न महानुभावी अष्टछाप के भक्त कवियों की पद–संग्रह–प्रकाशन परम्परा में आज एक कड़ी और जोड़ी जा रही है, जो 'विद्याविभाग' कांकरोली की (अष्टछाप-स्मारक-समिति) योजना में तुरीय प्रयास और विराट् हिन्दी–साहित्य पुरुष की आपादलम्बिनी गद्यपद्यमयी सुवर्णमणि माला का अन्यतम मञ्जुल स्तवक है।

गोविन्दस्वामी, कुंभनदास, छीतस्वामी के पद–संग्रहों के उपरान्त चतुर्भुजदास कृत पद–संग्रह का प्रकाशन एक प्राथमिकता को आत्मसात् किये हुए है।

गो. श्रीविट्ठलेश प्रभुचरण द्वारा आविर्भूत कीर्तन–साहित्य जगत् में 'सूरसागर' और 'परमानन्द सागर' ऐसे 'पूर्वापर तोयनिधि' हैं, जो स्व–स्वरूप में अवस्थित होकर भी संक्लिष्ट हैं और जिनकी उत्ताल तरंगाकुल विपुल भाव–राशि में अन्य सुकृतियों की कृति स्रोतस्विनियों का अन्तर्लीन हो जाना असंभावित नहीं है। किसी विस्तृत संगमस्थली पर ही तदीय परिदर्शन और आचमन तत्–स्वरूप का परिचायक हो सकता है।

पद–विश्लेषण—

पुष्टिमार्गीय पद्यसाहित्य–यात्रा के सहचर अष्टछाप–कवियों की मंडली में नन्ददास और कृष्णदास तो स्वगत वैशिष्ट्य से पृथक् ही परिलक्षित हो जाते हैं। जहाँ एक में अतिशय भक्तिभाव भरित, कोमलकान्त, कीर्तन–कृति की ललितगति विलासमयी चमत्कृति का अनुभव होता है, वहाँ अपर में संस्कृतनिष्ठ, गांभीर्यार्थबोधक, दीर्घ, पदविन्यास का प्रत्यक्ष परिदर्शन। एतावता पद–रचना के राजपथ में एतदीय पदीय संकुलता का उतना भय

नहीं रहता जितना अन्यदीय का। अद्यावधि पूर्व प्रकाशित सभी पद-संग्रह संकलन की दृष्टि में प्रामाणिक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति से प्रकाशित किये जा चुके हैं। इस प्रकाशन के समकाल ही जहाँ कृष्णदास के 'कृष्णसागर' का अवगाहन प्रारंभ कर दिया गया है, वहां निश्चिन्तता से 'परमानन्द सागर' के प्रकाशन का उपक्रम भी किया जा रहा है।

परमानन्द-सागर और सूरसागर के पदों में भाषा, भाव, शैली, चमत्कृति और भावप्रवण धाराप्रवाह सभी में अद्भुत साम्य दृष्टिगोचर होता है। शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय निर्गुण भक्ति के धरातल पर जहां उन दोनों में 'सालोक्य' भावना का उदात्त दर्शन होता है, वहाँ काव्य-प्रबन्ध सम्बन्ध में वे दोनों इतने 'सामीप्य' को प्राप्त हो जाते हैं, जो अकथनीय है*। अलौकिक भागवत लीलाभाव-भावना के आभूषणों से अन्तर्बाह्य अलंकृत उभय कवियों की 'सार्ष्टि' में कोई सन्देह ही नहीं रहता, तो भगवत्साक्षात्कार एवं इष्ट-तन्मयता के 'सारूप्य' में उन्हें पहिचानना कठिन ही नहीं, असंभव भी हो जाता है। फलतः भक्तों द्वारा अनभीप्सित मोक्ष-चतुष्टय की लिप्सा से परे किसी अनुपम अद्भुत सरस भगवत्स्वरूप-सेवना में ही कोई विवेकी 'भेद-सहिष्णु अभेद-पद्धति' से उनका साक्षात्कार कर सकता है, और तभी अनुभवैकवेद्य उनके साहित्य का रसास्वाद।

इधर विपश्चिद्वर डा. श्रीगोवर्धननाथ शुक्ल एम. ए. (अलीगढ, विश्वविद्यालय, हिन्दी प्राध्यापक) द्वारा सम्पादित 'परमानन्द सागर' का स्वतंत्ररूप से मुद्रण प्रारंभ हो गया है। गत वैशाख मास में श्रीवल्लभाचार्य चरणों की व्रजस्थित बैठकों की यात्रा के समय प्रसंगवश उन्होंने अद्यावधि मुद्रित सामग्री का मुझे दर्शन कराया था और सम्मिलित रूप में उसे प्रकाशित करने की रूपरेखा उपस्थित की थी। पर यह सफल न हो सकी। कारण स्पष्ट था कि, अद्यावधि मुद्रित सामग्री का कांकरोली की सम्पादित प्रेस-कापी से कैसे समन्वय किया जाय? जबकि-उभयत्र सम्पादकीय पद्धति, शाब्दिक रूप-निर्धारण वैषयिक वर्गीकरण के साथ पदों

---

* देखो— लेखक द्वारा प्रकाशित— 'सूरसागर के संदिग्ध पदों का विश्लेषण' नामक लेख (नागरी प्र. पत्रिका वर्ष ५९ अंक २ सं. २०११)

की संख्या में भी एक महद् अन्तर विद्यमान था। प्रारंभिक मुद्रित पदों में विषयानुसार प्राप्त होनेवाले अन्य अधिक पदों को कहाँ ढूंसा जाय ? अनुक्रम प्राप्त अन्तःपाती विषयों का कहां समावेश हो ? और उपादेय पाठभेद का योगक्षेम कैसे निर्वाहा जाय ? आदि बाधाएं ऐसी थीं जिनका कोई परिहार नहीं हो सकता था। शुक्लजी ने यद्यपि 'परमानन्ददास' सम्बन्धी स्वकीय निबन्ध में कांकरोली में विद्यमान हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख किया है, पर सौकर्याभाववश उन्हें उनके दर्शन का सुअवसर भी नहीं मिला है। कुछ वर्ष पूर्व 'सुधा' (लखनऊ) में अथवा अन्यत्र ऐसी ही किसी प्रकाशित सामग्री से उन्होंने प्रतियों का परिचय संकलित कर लिया है। इधर उन्हें परमानन्ददास कृत लगभग ९०० ही पद मिल पाए हैं, जब कि, विद्या-विभाग के सम्पादन में १४०० के लगभग पद संकलित हो चुके हैं। प्रत्यक्षतः उक्त संभावित प्रकाशन 'परमानन्ददास कृत पद-संग्रह' ही कहा जा सकता है न कि :— 'परमानन्द सागर'। और यही सोचकर 'अष्टछाप-स्मारक समिति' कांकरोली ने स्वकीय सम्पादन को पृथक् रूप देना ही समुचित समझा है।

कहने का तात्पर्य यह कि— अष्टछापी कवियों के पदों का संकलन, सम्पादन, विश्लेषण अथच वर्गीकरण प्रोच्यमान निम्न आधारों पर सरलीकृत हो सकता है, जिसके लिये 'आदायचरता' के स्थान पर गंभीरता से कार्य करने की आवश्यकता है।

वे हैं :—

(१) सम सामयिक प्राचीन विभिन्न पोथियों का परस्पर सम्वाद। सिद्धान्तानुसार पाठभेद के औचित्यानौचित्य की समीक्षा +

(२) शु. सम्प्रदाय के पीठस्थलों में प्रतिदिन उपयोग में आनेवाली कीर्तन-सामग्री का पर्यालोचन, और कीर्तन-पद्धति, उत्सव-प्रणाली एवं लीलाभावना का समन्वयात्मक अध्ययन।

(३) पुष्टिमार्गीय वार्ताओं में आगत प्रसंगों के साथ पदों का संकलन और समवचयन। आदि।

+ प्रस्तुत विषय के उदाहरण रूप में सूरदासकृत "गोवर्धन लीला" का सम्पादित पद (वि. विभाग कांकरोली का प्रकाशन) देखा जा सकता है।

यद्यपि सम्प्रति हिन्दी-साहित्य में पुष्टिमार्गीय गद्य, पद्य, भाव, सिद्धान्त आदि पर कई विशेष अन्वेषण और अध्ययन प्रस्तुत किये जा रहे हैं, डा. श्रीधीरेन्द्र वर्मा, डा. श्रीवासुदेवशरण अग्रवाल जैसे ख्यातिप्राप्त विद्वद्वरेण्य इस दिशा में अतिशय श्रद्धावान् तलस्पर्शी एवं प्रेरक प्रयोजक विद्यमान हैं, तथापि विगत दो युगों का अनुभव मुझे यह कहने को बाध्य करता है कि, अध्ययनशील हिन्दी के विद्वानों में अभी भी अनौदार्य दुराग्रह किम्वा अपरिज्ञान स्थान जमाये हुए है, जो वे साम्प्रदायिकता के हौआ के भय से पुष्टिमार्ग के निकट सम्पर्क में आते झिझकते हैं। यदि आते भी हैं तो निर्णीत धारणा अधिक और तथाकथित ज्ञान का उपनेत्र चढा कर। ऐसी अवस्था में तात्विक स्वरूपाज्ञान किम्वा विपरीत ज्ञान के अतिरिक्त उनके और क्या पल्ले पड़ सकता है? विश्वविद्यालयों के अध्ययनशील पदवी-प्रेप्सु छात्र ही नहीं, निष्णात प्राध्यापक और परीक्षक भी पिष्टपेषित, शाब्दिक रूपान्तरित अथच प्रसह्य प्रतिष्ठापित मनमाने उपकरण को ही स्वीकृत कर कृतार्थमन्य हो जाते हैं। 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' ही प्रयोग होता चला आता है, इतिहास-लेखन में नवीन गवेषणा को स्थान नहीं मिल पाता। इस दिशा में क्या व्यक्ति? क्या संस्था? सभी समान पथ के पथिक बने हुए हैं, किसको क्या कहा जाय? अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इन सब विप्रतिपत्तियों का संशोधन, समाधान, परिमार्जन तभी संभव है, जब शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय मूल आधारभूत हिन्दी गद्य-पद्य का विपुल विस्तृत साहित्य साहित्य-जगत् के प्रकाश में लाया जाय, अथच उसका अध्ययन हो। विपश्चिदपश्चिमों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने के निमित्त ही इस प्रकाशन की क्रमिक परम्परा में : आज 'चतुर्भुजदास' कृत पद-संग्रह प्रस्तुत किया जा रहा है।

आदर्श प्रतियाँ—

'चतुर्भुजदास' कृत पद-संग्रह के प्रस्तावित सम्पादन में कांकरोली विद्याविभागीय सरस्वती-भंडार के हिन्दी-विभाग में विद्यमान निम्नलिखित आदर्श प्रतियों का उपयोग किया गया है :-

(१) वर्षोत्सव तथा नित्यकीर्तन पद-संग्रह । हि. बं. १/१ ।
पत्र १९२ । पूर्ण । प्रतिपत्र पंक्ति १७ । आकार ११ × ९॥।
लेखन काल सं. १८८८ आषाढ कृ. ६ भृगौ ।
(अष्टछाप तथा अन्यकृत)

(२) कीर्तन-संग्रह (चतुर्भुजदास कृत पद-संग्रह) हि. वं. २/१ ।
पत्र २ से २३ । अपूर्ण । पंक्ति २१ । आकार ९ × ८ ।
लेखक— ओंकारजी भूषणदास मोदी । लेखन समय :—
लगभग २०० वर्ष पूर्व ।

(३) कीर्तन-संग्रह (प्रात:काल के) हि. बं. ३/१ । पत्र ४१० ।
अपूर्ण । पंक्ति १६ । आकार ९॥। × ६ ।
(अष्टछाप तथा अन्यकृत)

(४) कीर्तन-संग्रह (उत्सव के) हि. बं. ३ × २ । पत्र ४६८ ।
पूर्ण । पंक्ति १४ । आकार ९॥ × ९ । लेखन समय सं. १८४६
का. व. २ । लेखक द्वारकादास भगवानदास पखावजी । पोथी
भगवानदास की ।
(अष्टछाप तथा अन्यकृत)

(५) कीर्तन-संग्रह । चतुर्भुजदास । हि. बं. १९/५ । पत्र ७० । अपूर्ण ।
पंक्ति १४ । आकार ६ × ३॥। ।

(६) कीर्तन संग्रह । चतुर्भुजदास । हि. वं. १० ६/४ । पत्र १९५ से
२३९ । अपूर्ण । पंक्ति १६ । आकार १०॥ × ७ ।
(लेखन समय सं. १६५५ के लगभग । जीर्णपत्र । कीटकर्तित ।
इसमें अष्टछापी अन्य कवियों के पदों का भी शुद्ध और प्रामाणिक
संकलन है— जो सर्वापेक्षया उपादेय है । अपूर्ण होने पर भी
इससे, लगभग २०० पदों की सामग्री मिली है)

(७) कीर्तन-संग्रह (नित्यपद) हि. वं. २७/४ । पत्र २४५ । अपूर्ण ।
पंक्ति १४ । आकार ५। × ६॥ ।
(अष्टछाप तथा अन्यकृत)

(८) कीर्तन-संग्रह । चतुर्भुजदास । हि. वं. ८१ ३/२ । पत्र २१ । पूर्ण । पंक्ति २७ । आकार १५॥ × १०। ।
लेखन समय सं. १८..... श्रा. कृ. ३ शुक्र ।
(इसमें कृष्णदासकृत कृष्णसागर (पद-संग्रह) भी है । भगवदीय कीर्तनिया श्री जमनादास जरीवाला बंबई, द्वारा समर्पित)

(९) कीर्तन-संग्रह (नित्यपद राग-क्रम से) हि. वं. ११६/१ । पत्र २५२ । अपूर्ण । पंक्ति २२ । आकार १४ × ९॥ । जीर्ण ।
(श्री गब्बूलालजी वर्मा कांकरोली द्वारा समर्पित)

इन प्रतियों के अतिरिक्त सरस्वती-भंडार में विद्यमान अन्य पोथियों से भी चतुर्भुजदास कृत पदों का संचयन किया गया है, जिनकी प्रायः सूची 'कुंभनदास-पद संग्रह की भूमिका' में दी गई है । कवि कृत कितने ही पद प्रारंभिक पाठभेद से मिलते हैं, जिनका निर्देश प्रतीक-सूची में कोष्ठक में किया गया है ।

चतुर्भुजदास कृत पदों में उनकी छाप तीन रूपों में मिलती है :—
(१) चत्रुभुज (२) चत्रुभुजदास (३) दास चतुर्भुज । संगीत सम्बन्धी माधुर्य के लिये नाम का रूपान्तरित होना सहज है, जिसके लिये अन्यकृत होने की क्लिष्ट कल्पना नहीं करनी चाहिये ।

चतुर्भुजदास कृत पदों के प्रारंभिक संकलन में यद्यपि चारसौ सवा चारसौ पदों का समावेश हो गया था, पर अध्ययन के अनन्तर प्रामाणिक रूप में अन्य कवि कृत होने एवं प्रारंभिक पाठ-भेद के कारण उनको स्थान नहीं दिया गया । जैसा कि-आगे कहा जा रहा है-कुंभनदास कृत पदों के संश्लेष के अतिरिक्त इन पदों में अन्य के पदों का समावेश नहीं है । यह पद निश्चित रूप में चतुर्भुजदास कृत हैं ।

वर्गीकरण—

पदों के विषय वर्गीकरण में प्रतियों के आधार पर प्राचीन पद्धति को अपनाते हुए इस प्रकार नामकरण किया गया है :—

(क) वर्षोत्सव—जिसमें जन्माष्टमी (भा. कृ. ८) से लेकर रक्षा-बंधन (श्रा. सुद १५) तक विभिन्न उत्सवों एवं प्रसंगों पर संकीर्त्यमान

पदों का समावेश है। इसमें १ से १३५ संख्या तक (१३५) पदों का संकलन है।

(ख) लीला—जिसमें श्री नन्दनन्दन यशोदोत्संग लालित श्रीकृष्ण की बाल्य, पौगंड, कैशोर अवस्थाओं की विविध लीला के पदों का समावेश है। इसमें १३६ से ३५० संख्या तक (२१५) पद हैं।

(ग) प्रकीर्ण—जिसमें उक्त दोनों विषयों से बहिर्भूत विषयों का अवचयन है। इसमें ३५१ से ३५९ तक (९) पद हैं। तथा ३६० से ३६५ तक (६) पद परिशिष्ट के हैं। इन पदों का एकत्र योग ३६५ होता है।

इन यावत्प्राप्त पदों की अपेक्षा चतुर्भुजदास कृत कुछ अन्य पद भी अन्यत्र प्रामाणिक पोथियों में मिल सकते हैं-पर ऐसी संभावना बहुत कम है, फिर भी उनका संकलन किया जा सकता है।

पाठभेद के सम्बन्ध में प्रामाणिक और शुद्ध प्रति को ही महत्व देकर शेष साधारण पोथियों की उपेक्षा कर दी गई है। क्योंकि, उससे अभीप्सितार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकी है।

शाब्दिक रूप-निर्धारण—

पदों की भाषा के अन्तर्गत शब्दों के निर्धारित रूप-सम्बन्ध में अद्यावधि व्रजभाषा-विशेषज्ञों का ऐकमत्य नहीं हो पाया है। प्रान्तभेद के कारण-जिसमें व्रज, अवध, बुन्देलखण्ड, राजस्थान, मध्य प्रदेश, युक्त प्रान्त आदि की बोलियों के उच्चारण-भेद से विभिन्नता प्रत्यक्ष दीख पड़ती है लेखन-लिपि-में भी उसका अपरोक्ष प्रभाव पड़ता है। प्रान्तीय लेखक प्रान्तीय शब्दोच्चारण की विवशता के कारण तदनुरूप शब्द-लिपि को ढालता है, और उसमें विभिन्नता स्वभावतः अज्ञात रूप में चली आती है। सरस्वती-भंडार में प्राप्त प्राचीन प्रामाणिक शुद्ध प्रतिलिपियों में भी एक ही शब्द स्थानान्तर में कुछ परिवर्तन के साथ मिलता है, कहीं सानुनासिक निरनुनासिकता है, तो संप्रसारण और असंप्रसारण का भी प्रयोग है, एक मात्रा और दो मात्राओं का विभेद दृष्टिगत होता है, तो ह्रस्व दीर्घ की समस्या भी सामने आ जाती है। एक ही 'नयन' शब्द 'नैन' नैंन 'नयन' के रूप में

लिखा मिलता है, 'आयो' 'आयौ,' मेरो, मेरौ' में एक मात्रा दो मात्राओं का दोनों का प्रयोग लिखा मिलता है। 'स्याम' 'श्याम' 'सोभित' 'शोभित' आदि में 'स' 'श' को एक रूप देकर 'श्रवण' को 'श्रवन' 'स्रवन' और स्रौन लिखा जा सकता है 'आज' कहीं 'आजु' के रूप में है तो 'पल' 'पलु' और 'तन' 'तनु' 'मन' 'मनु' भी लिखा मिलता है। इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इस सम्बन्ध में गंभीरता और धैर्यपूर्वक शब्दों का रूप निश्चित करना आवश्यक है, जो सहेतुक प्रामाणिक और शुद्ध हो। प्रस्तुत सम्बन्ध में कुछ नियमों का संकलन किया गया है, जिस पर अन्य अवशिष्ट अष्टछाप-साहित्य के प्रकाशित हो जाने पर विचार किया जायगा। सम्प्रति तो उच्चारण माधुर्य को महत्व देकर प्राचीन आधार पर यथासंभव शब्दों का रूप लिखा जा रहा है। जिसमें द्वैविध्य का भी समावेश हो सकता है। मैं व्रजभाषा के लिये व्याकरण के नियमों में कुछ ढिलाई देकर शब्दों के प्रिय मधुर उच्चारण का पक्षपाती हूं।

संमिश्रण—

अष्टछापी कवियों में 'चतुर्भुजदास' और 'कुंभनदास' में साहचर्य, पार्थक्य दोनों ही दृष्टिगोचर होते हैं। जन्यजनक (पुत्र-पिता) के भाव से सम्बन्धित अथच अवस्थाकृत विभेद से जहाँ दोनों लघिष्ठ-ज्येष्ठ भावापन्न हैं, सतीर्थ्यता में भी समानकोटिक नहीं हैं। कुंभनदास श्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य हैं तो चतुर्भुजदास प्रभुचरण गो. श्रीविट्ठलेश के। पर साहित्य-संगीत-कला के उत्कर्षाधायक श्रीविट्ठलेश द्वारा अष्टछाप के महा सत्र में दोनों का समान कक्षा में वरण किया गया है। यहाँ लौकिक भेदभाव को महत्व न देकर भक्ति-काव्यमयी उदात्त भावना के आधार पर उभय ऋत्विजों को श्रीगोवर्द्धननाथजी की कीर्तन-सामगीति का सौभाग्याधिकारी निर्वाचित किया गया है। एतावता अन्य कवियों के समान इन दोनों में भी यदि भाव-साम्य दृष्टिगोचर होता है तो कोई आश्चर्य नहीं, छाप-परिवर्तन के कारण संकलनकर्ता की असावधानी से भी पदों में संमिश्रण असंभव नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार पाठभेदपूर्वक किञ्चित् परिवर्तित दोनों के कतिपय पद इस प्रकार उपलब्ध होते हैं :—

		चतु. पद सं.×	कुंभन. पद सं.×
(१)	अछन अछन पगु धरनि धरै	२९५	
	(जो तू अछत अछत ,,)		२८५
(२)	आरोगत नागर नंदकिसोर	१६६	
	(आरोगत मोहन मंडल जोर		१८२
(३)	चलि अंग दुराए संग मेरे	२९८	
	,, ,, ,,		२८३
(४)	तेरौ मनु गिरिधर बिनु ३१४		
	,, ,, ,,		२८७
(५)	बंदू जो तबहिं मान धरि आवै	२३७	
	(बदे जो जबहिं मान धरि)		२८८
(६)	व्रज पर नीकी आजु घटा	११४	
	(व्रज पर नीकी आजु घटा हो)		९७
(७)	श्रीलछमन भट देत बधाई	१०५	
	(श्रीलछमन गृह आज बधाई)		८२
(८)	सिर परी ठगौरी सैन की	२४३	
	(,, ,, ,,)		३९०
(९)	स्याम सुनु नियरौ आयो मेहु	११५	
	(,, ,, ,,)		११४

उपसंहृति—

यद्यपि मुद्रण एवं संशोधन में सावधानी बर्ती गई है, तथापि–देशान्तर की उपस्थितिवश उसमें कतिपय त्रुटियों का रहजाना स्वाभाविक है। मशीन के

× यह–पद संख्या कांक. वि. विभाग द्वारा प्रकाशित पदसंग्रह से दी जा रही है।

कारण भी अक्षरों मात्राओं के विलोप से समीचीनता कुछ तिरोहित हो गई है, जिसके अर्थ शुद्धिपत्रक लगाया गया है। व्यवस्थापूर्वक मुद्रण के लिये चेतन प्रकाशन मंदिर, बडौदा के अध्यक्ष पं.श्री मोतीदासजी चेतनदासजी का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता-जिन्होंने मथुरा, (व्रज-मण्डल) नागपुर जबलपुर आदि स्थानों में मेरे प्रवास के समय प्राथमिक प्रूफ-संशोधन में सहयोग दिया है।

अष्टछाप-साहित्य-प्रकाशन के प्रेमी उस भगवदीय महानुभाव की साहित्य-सेवा का भी स्मरण किया जाना चाहिये, जिसने यथाशक्ति आर्थिक सहयोग देकर भी अपने नाम-प्रकाशन की अनुज्ञा नहीं दी है। अस्तु शम्

जन्माष्टमी
संवत् २०१४
दि. १९-८-१९५७

शुभाशाभिलाषी,
पो० कण्ठमणि शास्त्री
संचालक-विद्याविभाग,
कांकरोली (राज)

श्री चतुर्भुजदास

[जीवन-झांकी]

जीवन का लक्ष्य—

लीला – नाट्यधारी अद्भुतकर्मा परमात्मा की रंगस्थली पर जीव-परम्परा में क्रमशः अवतरित विशिष्ट मानव, उदात्त गुणों की समष्टिवाला वह पात्र है, जो– स्वकीय मंजुल अभिनय से सूत्रधार, पात्र और दर्शकों को आनन्दित करता है, अथच 'रसोवै सः' के हृदयैक संवेद्य परमानन्द-संवित् में मग्न रहा करता है।

साहजिक, शैक्षिक, संस्कारोद्भूत पद्धति से समधिगत साम्मुख्य, अभिनय–कौशल एवं क्रिया की तद्रूपता के न केवल प्रदर्शन से अपितु जीवन में अनवद्य चरित्र–चित्रण से भी परितः प्रमोद का अभिवर्षण करना ही मानव–जीवन का चरम लक्ष्य होना चाहिए। पाषण्डात्मक सर्व–सन्यास की ढपली पीट कर 'स्व' की सीमित कलेवर–कोठरी में एकाकी आत्मानन्द का घूंट गटक लेना भले ही पुरुषार्थ हो सकता हो? पर वह परम पुरुषार्थ तो नहीं है, पाशविक मनोवृत्ति है, जहाँ 'स्व' ही सब कुछ है। जगत् की काल्पनिक नश्वरता की विभीषिका में 'यल्लब्धं तल्लब्धं' की दृष्टि से जीवन के छोर में यत्किञ्चित् बांध कर मृत्यु के पंजे से दूर भागने का प्रयत्न अमृत पुत्रों का निर्विशेष 'पलायनवाद' है। इस पलायन में न तो उसे कहीं विश्राम मिल सकता है न आत्म–सन्तुष्टि ही।

कतिपय कठोर सिद्धान्तवादी, शास्त्रीय दृष्टिकोण में 'पुरुषस्य अर्थः' और 'परमश्चासौ पुरुषार्थः' इस विग्रह–पट में 'परम पुरुषार्थ' शब्द को लपेट कर समाधिस्थ कर देते हैं, पर शुद्धाद्वैतवादी 'परमश्चासौ पुरुषः' और 'परमपुरुषस्य + अर्थः' = परमपुरुषार्थः के वसनाञ्चल में 'स्व' और 'पर' की अनुपम झांकी करता है– जो विज्ञान की दुनिया में नया दृष्टिकोण होता है। 'सखण्ड–अद्वैत–ज्ञान' की अपेक्षा 'अखण्ड–शुद्ध–अद्वैत' का ज्ञान ही उसका घोष होता है। 'आत्मैवेदं' के प्रथम 'ब्रह्मैवेदं' को वैशिष्ट्य देकर वह महानुभाव जगत के जीवन को सरस बनाता है। स्वयं

विकसित होकर जगत के जीवों को विकसित, आह्लादित, परम रंजित करना ही सन्त-परम्परा का असाधारण लक्षण है, जिसमें 'अष्टछाप' और उनके अनुयायि भक्तों का भी महत्वपूर्ण समावेश है। महानुभावी भक्त कवि, अष्टछाप के वयोवृद्ध अन्यतम प्रतीक, महात्मा कुंभनदासजी के सच्चे आत्मज, चतुर्भुजदासजी का नाम भी इसी प्रसंग में बड़े गौरव के साथ लिया जा सकता है, जिन्होंने स्वल्प वय में ही क्या काव्यशक्ति ? क्या भक्तिभाव ? सेवानुभव एवं भगवन्मयता, वैष्णवता आदि में इतर महानुभावों की समकक्षता अधिगत कर ली थी और जो-प्रारंभ से ही दैवी गुणों की प्रतिभा से जगमगाने लगे थे।

हिन्दी साहित्य में चतुर्भुजदास—

बालकवि चतुर्भुजदास के पिता कुंभनदास व्रजमण्डल में 'जमनावता' ग्राम के निवासी गौरवा क्षत्रिय थे। जो 'दैवाल्लब्धेन सन्तोषः' से खेतीबारी और आत्मविचरणार्चन' के लक्षणों का परिपालन करते हुए श्री गोवर्द्धन-नाथजी की त्रिविध सेवा में ही अपना सर्वस्व समर्पण कर चुके थे। भगवत्सेवा और भगवल्लीला-गुणगान ही जिनका श्रेय प्रेय था, भगवद्-भक्तत्व ही जिनके पारिवारिक मोह का कारण था।

अष्टछाप की वार्ता और दोसौ बावन वै. की वार्ता में सुवेदित होते हुए भी कुंभनदासात्मज चतुर्भुजदास के चरित्र-सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। निर्णयात्मक अध्ययन की ओर हिन्दी के विद्वानों का रंचमात्र भी प्रयास दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।

नागरी-प्रचारिणि सभा की खोज रि. के आधार पर मि. बं. विनोद में इस सम्बन्ध में कितनी गड़बड़ की गई है। चतुर्भुजदास नामक कुछ कवियों का परिचय वहाँ इस प्रकार दिया गया है :—

(५६) चतुर्भुजदास-ये स्वामी विठ्ठलनाथजी के शिष्य और कुंभनदास के पुत्र थे। 'इनका वर्णन २५२ वै. वार्ता में है इनकी गणना अष्टछाप में थी। इनकी अल्ल गौरवा थी। इन्होंने 'मधु मालती री कथा' एवं 'भक्ति-प्रताप' नामक ग्रन्थ भी बनाए हैं। आपका समय १६२५ के लगभग था।

इनके ४९ पद एवं समैया के पद नामक एक ग्रन्थ हमने देखा है। **इनका एक ग्रन्थ 'द्वादश यश' नामक** और देखने में आया है, जिसमें सं. १५६० लिखा है। जान पडता है यह समय अशुद्ध है। संभव हैं यह ग्रन्थ किसी दूसरे चतुर्भुजदास का हो। **'हित जू कौ मंगल' नामक इनका एक** और ग्रन्थ खोज में मिला है"

(२८०) स्वामी चतुर्भुजदासजी—अष्टछाप वाले इसी नाम के कवि से पृथक् हैं। उनका समय १६२५ था और इनका सं. १६८४। इनके बनाए हुए (१) धर्मविचार, (२) सिच्छासार (३) हितउपदेश (४) पतितपावन (५) मोहनी जस (६) अनन्य भजन (७) राधाप्रताप (८) मंगलसार (९) विमुख सुखभंजन नामक ग्रन्थ हमने छत्रपुर में देखे हैं। **'द्वादशयश'** भी इन्ही की एक रचना है। प्र. त्रै. खोज से इनके एक और ग्रन्थ **'हित जू कौ मंगल'** का पता चलता है"

"(१०२२/२) चतुर्भुजदास कायस्थ। ग्रन्थ—**मधुमालती की कथा।** रचनाकाल सं. १८३७ के पूर्व [खोज १९०२]"

प्रस्तुत उद्धरणों में विशिष्ट शब्दों के परस्पर विरुद्ध—वर्णन पर ध्यान देने से विद्वान् लेखक की असम्बद्ध उक्तियों का स्वयं पता चल जाता है।

अभी कुछ दिन पूर्व पं. कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' ने 'शुक्ल अभिनन्दन ग्रन्थ' (सा. खं. पत्र १७, १८) में मध्यप्रदेश के हिन्दी कवियों का परिचय देते हुए इसी त्रुटि को अपनी गवेषणा बना डाला है। उन्होंने लिखा है :—

"इनमें से कुंभनदास और चतुर्भुजदास गढा (जबलपुर) के निवासी थे। चतुर्भुजदास कुंभनदासजी के पुत्र थे। 'द्वादशयश' 'भक्ति प्रताप' और 'हितजू कौ मंगल' इनके मुख्य ग्रन्थ हैं। इनके सम्बन्ध में नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' में लिखा हैं :—

गायो भक्त प्रताप सबहिं दासन्त कहायो।
राधा वल्लभ भजन अनन्यता वर्ग बढायो॥
मुरलीधर की छाप कवित अति ही निर्दूषण।
भक्तन की पद-रेणु बहै धारा सिर-भूषण॥

सत्संग सदा आनन्द में रहत प्रेम भींजो हियो।
हरि वंश भजन बल 'चतुरभुज' गौड देश तीरथ कियो॥

'गौड देश तीरथ कियो' से स्पष्ट है कि, नाभादासजी की दृष्टि में चतुर्भुजदास का कितना महत्व था। और उनके कारण गौड देश अर्थात् गौडवाना भक्तों की दृष्टि में कितना ऊंचा उठ गया था"।

'कुसुमाकरजी' का यह लेख कितना भ्रमपूर्ण है, स्पष्ट प्रतीत होता है। अष्टछाप के चतुर्भुजदास के समकालीन एक और चतुर्भुजदास श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण के शिष्य थे, जो 'मिश्र' उपाधिधारी ब्राह्मण और बादशाह अकबर के सम्मानित पंडित और कवि थे। इनका चरित्र 'दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में (सं. २४९) दिया हुआ है।

डा. दीनदयालु गुप्त ने अपने 'अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ (पत्र ३८४) में एक प्रति का परिचय देते हुए इस सम्बन्ध में भद्दी भूल की है। लिखा है :—

"प्रति नं. ७२/१ इस पोथी में चतुर्भुजदास मिश्र गो. श्रीविट्ठलनाथजी के सेवक द्वारा विरचित 'भाषा संग्रह शान्त रस' नामक ग्रन्थ है, जिसकी रचना का संवत् १७०२ वि. दिया हुआ है। ये चतुर्भुजदास मिश्र अष्टछाप के चतुर्भुजदास गौरवा क्षत्रिय से भिन्न हैं"।

उक्त कथन में गो. श्रीविठ्ठलनाथजी के शिष्य मिश्र चतुर्भुजदास की स्थिति सं. १७०२ तक असंभवित है। श्रीगुसांईजी का समय सं. १५७२–१६४२ निश्चित है। अतः यह रचना मिश्र चतुर्भुजदास की न होकर किसी अन्य चतुर्भुजदास की होगी, ऐसा मेरा मत है।

वार्ताओं में सुविदित चरित्र की ओर ध्यान न देकर अनर्गल लेखन का यह एक उदाहरण है। ऐसे लेखन और अध्ययन से हिन्दी साहित्य में तथ्य पर क्या प्रकाश पड़ सकता है?

कुंभनदास और उनके पुत्र चतुर्भुजदास प्रारंभ से ही व्रज के निवासी रहे हैं। जैसा कि वार्ता में कहा गया है। वे व्रज छोडकर कहीं अन्यत्र नहीं गए। नागरी प्र. सभा, मिश्र ब. विनोद आदि प्रायः किसीने इसका विश्लेषण नहीं किया और अन्य चतुर्भुजदास के चरित्र, ग्रन्थनिर्माण आदि को नामसाम्य से अष्टछापी चतुर्भुजदास में सम्मिलित कर दिया है।

वास्तव में कुंभनदासात्मज अष्टछापी चतुर्भुजदास न तो गौडदेशवासी थे, और न उन्होंने 'द्वादश यश' 'भक्ति-प्रताप' और 'हितजू कौ मंगल' नामक कोई ग्रन्थ ही बनाया है। 'मधुमालती' नामक ग्रन्थ भी इनका रचित नहीं है। वह चतुर्भुजदास कायस्थ का है। श्रीविट्ठलनाथजी के अनन्य शिष्य होने के कारण अष्टछापी चतुर्भुजदास ने भक्तिसम्बन्धी पदरचना के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रन्थ नहीं बनाया।

इनकी छाप से लगभग ४०० पद प्राप्त होते हैं, जिनमें कुछ कुंभनदास कृत भी सम्मिलित हो गए हैं। विश्लेषण के बाद इनके ३६५ पद यहाँ प्रकाशित हैं। कीर्तन-पदों में 'दास चतुर्भुज' 'चतुर्भुज' और 'चतुर्भुजदास' इस प्रकार की छाप मिलती है।

नाभादासजी ने अपने 'भक्त-माल' ग्रन्थ में जिन चतुर्भुजदास का उल्लेख किया है, वे अष्टछापी चतुर्भुजदास से भिन्न हैं। कुंभनदास के पुत्र चतुर्भुजदास का न तो भक्तमाल में और न प्रियादासकृत उसकी टीका में ही कहीं उल्लेख हुआ है। ध्रुवदासकृत 'भक्त-नामावली' में जिन चतुर्भुज भक्त का नाम दिया है, उससे कोई विशेष जिज्ञासा की पूर्ति नहीं होती। ऐसी अवस्था में पुष्टिमार्गीय वार्ताओं में ही इनका आवश्यक मौलिक परिचय जाना जा सकता है।

चारित्रिक सार्थकता—

मानव की साधारण कक्षा से ऊंचे उठे हुए संतभक्तों का विशेष भौतिक परिचय पाजाने से उनका कोई विशेष गौरव सिद्ध नहीं होता। उससे होता भी क्या है? महत्व उनकी उस उत्कर्ष स्थिति से आंका-जाता है, जो उन्होंने विषमताओं से संघर्ष कर त्याग, संयम, भक्ति, विराग, द्वन्द्व-सहिष्णुता और सेवाभावना से संप्राप्त की है। भौतिक जन्मकाल के परिज्ञान की अपेक्षा उनके उस जन्म का विशेष महत्व होता है, जिसे 'द्विज' संज्ञा दी जाती है और जब वे बहुसंभवान्ते किसी सद्गुरु की पीयूषवर्षिणी शरण में आकर उनके क्षेमंकर उपदेश का परिपालन करते हुए भूतल की अवस्थिति को सार्थक करते हैं- 'तनु-नवत्व' प्राप्त कर लोक-सेवा के पथ में शान्तिसुखदायिनी भगवत्सेवा का ध्येय पूरा करते हैं। उनका यह जन्म काल की क्षुद्रपरिधियों से नापा-तौला नहीं जाता। वही उनका आदि और वही उनका अन्त होता है।

उनके अध्रुव जराशीर्ण देह-परित्याग का भी कोई वैशिष्ट्य नहीं होता। वे यशःकाय से सर्वदा भूतल को अलंकृत करते हैं- उनका अक्षर देह अविशीर्यमाण होकर सतत स्थायी दिव्य हो जाता है। प्रतिष्ठा, धन, यश आदि उनके स्पृहणीय नहीं होते। आत्मख्याति से दूर-सुदूर एकान्त में तूष्णींभाव से अन्तगतपाप, पुण्यकर्मा, और द्वन्द्वमोहविनिर्मुक्त होकर भजन-साधना-विष्ट रहना ही उनका परम कर्तव्य होता है- एतदर्थ वे दृढव्रत होते हैं। ×

यह परिस्थिति प्रायः भारतीय सभी साधु सन्त महात्मा भक्तों की रही है— तब फिर चतुर्भुजदास ही इसके अपवाद कैसे रह सकते थे? प्रसंगोपात्त जिस किसी रूप में मिल जानेवाले लौकिक परिचय की अपेक्षा विशिष्ट-सम्माननीय अथच उल्लेखनीय आत्मिक परिचय ही उनका विशद व्यापक और वही उनके परिचयार्थ पर्याप्त होता है।

उपलब्ध वृत्त—

अष्टछाप वार्ता से विदित है कि- चतुर्भुजदास के पूर्व कुंभनदास के छै पुत्र और एक पुत्री थी। बाल्यावस्था में ही विधवा हो जाने के कारण पुत्री पिता के आश्रय में रह कर उनकी सेवा शुश्रूषा करती थी। * प्रथम के पांच पुत्र (जिनके नाम नहीं मिलते) लौकिक जीवन में ही आसक्त थे। ग्रामीणरहनसहन एवं सत्संगाभाव से उन सबका झुकाव कर्म, धर्म, भक्तिभाव की ओर नहीं था, और इसीसे कुंभनदास ने विरक्त होकर कुछ जमीन जायदाद देकर उन पांचों को पृथक् कर दिया था। कुंभनदास आसक्ति रहित होकर स्वयं अपनी जीविका चलाते थे। कुंभनदास का एक छठा पुत्र कृष्णदास था, जो श्रीगोवर्द्धननाथजी की गोचारण की सेवा करता था।

× येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः। [गीता ७/२८

* कुम्भनदासजी की वार्ता में 'भतीजी' का उल्लेख है, पर चतुर्भुजदास की वार्ता में पुत्री का। वहां लिखा है :—

(१) "सो कुम्भनदास की एक भतीजी हती" (अष्टछाप' कांकरोली प्र.पत्र २४५)

(२) " और इनके एक बेटी हती। सोऊ परम भगवदीय हती। सो ब्याह होत ही वाकौ भरतार कालवस भयो। तातें वह बेटी सदा कुम्भनदास के घर रहती " (अष्टछाप' कांक. प्र. पत्र ४५८)

पृथक २ उल्लेख से यह विषय सन्दिग्ध है।

तरुण अवस्था में ही गाय के संरक्षण में इसने अपने नश्वर शरीर को सिंह के समर्पण कर महाराजा दिलीप का उदाहरण प्रस्तुत किया था। कुंभनदास वैष्णवता के कथा–व्यासंग रहित सेवापरायणता के केवल लक्षण से कृष्णदास को अपना आधा पुत्र कहकर उससे पूर्ण संतोष नहीं करते थे। भगवद्वैमुख्य के कारण प्रथम पांच पुत्र तो उनके 'पुत्रत्व' की गणना में आते ही नहीं थे। +

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य के 'निरोधलक्षण' ग्रन्थोक्त 'पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः' इस सिद्धान्त से पुत्र में कृष्णप्रियता ही कुंभनदास की पितृत्वभावना का आधार था। यह कृष्णप्रियता सेवा और कथा दोनों से ही सम्प्राप्त होतीहै– फलतः कुंभनदास उभय गुणों की अवस्थिति अपने किसी पुत्र में देखना चाहते थे। वे चाहते थे कि– सच्चे अर्थ में पितृवात्सल्य का पात्र उनके सम्मुख आए और वह परमाराध्य प्रभु की उभय लीलाओं का रसावगाहन कर उन्हें भी उससे अभिषिक्त किया करे।

प्रस्तुत प्रसंग में वार्ता में कहा गया है :—

"सो कुंभनदास के मन में आई जो ऐसो कोई पुत्र न भयो जासों मैं अपने हृदै कौ भाव सब कहों, और जासों सब भगवद्वार्ता करों (तासों कुंभनदास उदास रहते)"*

जन्म और शरणागति समय—

कुंभनदासजी के प्रस्तुत सत्संकल्प की एक दिन पूर्ति हुई। जिस समय पुत्र–जन्म का समाचार इनके कर्णगोचर हुआ, उस समय वे श्रीगोवर्द्धननाथजी की माखन चोरी–लीला का मानस–दर्शन करते हुए पद–रचना में तल्लीन थे। 'आनि पाए हो हरि नीकें' (कुम्भनदास पद–संग्रह सं. १२९) की मधुर रचना में वे उस साक्षात् चतुर्भुज भगवत्स्वरूप का अनुसन्धान कर रहे थे– जब बालक श्रीकृष्ण दोनों हाथों में दही और माखन की हांडी संभाले हुए और दो हाथ प्रकटकर कमर में खुलते हुए पीताम्बर की गांठ

+ अष्टछाप—कुंभनदास की वार्ता पत्र २७० (कांक. वि. प्रकाशन)

* अष्टछाप (कांक. प्रकाशन) पत्र ४५९

लगा रहे थे। कुम्भनदास ने उस समय दर्शन किये कि–सहसा किसी व्रजबाला ने आकर ज्योंही कृष्ण को पकडा, वे उसकी बड़ड़ी अँखियाओं में दहीं का कुल्ला मारकर कीक देते हुए भाग खडे हुए। 'भरि गंडूष छींटि नैननि में गिरिधर धाइ चले दै कीकें' की विनोदपूर्ण सख्य-भावना से कुम्भनदास ने जिस 'चतुर्भुज' स्वरूप के दर्शन किये थे, स्मारक-रूप में उन्होंने पुत्र का नाम 'चतुर्भुज-दास' रख दिया। *

'सम्प्रदाय कल्पद्रुम' के आधार पर इनका जन्म सं. १५९७ मानने पर जैसा कि, अभीतक प्रसिद्ध है, सं. १६०२ में जबकि 'अष्टछाप' की स्थापना हुई, इनकी वय ५ वर्ष की होनी है, जो सूरदास और कुम्भनदास आदि वयोवृद्धों के लिये एक बड़ी चुनौती है। वार्ता के कथनानुसार+ गुसांइजी की शरण में आने के समय चतुर्भुजदास केवल ४१ दिन के शिशु थे। प्रभुदयालजी मीतल के लेखानुसार× यदि इस असामञ्जस्य को ठीक करने के लिये सं. १५८७ को जन्मसंवत् और सम्प्रदाय-कल्पद्रुम में निर्दिष्ट १५९७ को शरणकाल संवत् माना जाय तो ४१ दिन वाली उक्ति विरुद्ध पड़ती है। ऐसी अवस्था में चतुर्भुजदास का जन्म सं. १५७५ से ८० के भीतर माननाही संगत है – जैसा कि, मैंने 'कांकरोली का इतिहास' (पत्र १२० ब) में लिखा है और ४१ वें दिन श्रीगोवर्द्धननाथजी की शरण आए–श्रीगुसांइजी के नहीं–जैसा कि, पिंडरू निवृत्ति के बाद व्रजवासियों में आज भी होता है। इस समय श्रीगुसांइजी भी बालक थे। जब कि, संस्थानाधिपतित्वेन उनका सम्प्रदाय में वर्चस्व, आधिपत्य नहीं था। गुसांइजी का जन्म सं. १५७२ है और वे अपने पितृचरण श्रीवल्लभाचार्य के लीलातिरोधान (सं. १५८७ आषाढ शु. २) के समय १५ वर्ष के थे। श्रीवल्लभाचार्य कुल ४२ दिन सन्यास–आश्रम में स्थित रहे। सं. १५८७ के प्रारंभ में वे अपने पुत्र–परिवार के साथ काशी में ही विराजमान थे।

---

* अष्टछाप (कांक. प्रकाशन) पत्र ४६१–६३

\+ डा. दीनदयालु गुप्त ने 'अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ (पत्र २६५ और ३८०) में इसी जन्मसंवत् को माना है, जो कई कारणों से विरुद्ध पडता है।

× अष्टछाप परिचय (द्वि. सं. पत्र २७२)

सं. १५८७ में यदि चतुर्भुजदास का जन्म मानकर ४१ वें दिन उनके श्रीगुसांइजी के शरण आने को प्रामाणिकता दी जाय तो उस समय श्रीगुसांइजी की व्रज में उपस्थिति संभव नहीं थी। अपने पिता श्रीवल्लभाचार्य के लीलावसान के उपरान्त लगभग ५–६ मास तो वे काशी में रहे होगें।

इन सब हेतुओं से सं. १५७५ से ८० के भीतर चतुर्भुजदास का जन्म और १५९७ में श्रीगुसांइजी के द्वारा आत्मनिवेदन की दीक्षा लेना अधिक संगत हो सकता है - जबकि, श्रीगोपीनाथजी की कार्यविरति और प्रदेश–परिभ्रमण के कारण श्रीगुसांइजी को आचार्यत्व प्राप्त सा–हो गया था, और वे श्रीनाथजी के मंदिर का प्रबंध अपने हाथ में ले चुके थे। इसी समय इनका वैष्णवधर्म में दीक्षित होना और सं. १६०२ में अष्टछाप में परिगणित होना उपयुक्त जँच जाता है। विदित होता है कि, चतुर्भुजदास का शिशु अवस्था में श्रीनाथजी की शरण में आना और युवावस्था में श्रीगुसांइजी द्वारा सम्प्रदाय में दीक्षित होना यह दो बातें वार्ता में एक ही रूप में समाविष्ट हो गई हैं।

निष्कर्षतः–सं. १५७५ से ८० के भीतर चतुर्भुजदास का जन्म हुआ और वे पिंडरू निवृत्ति के बाद जन्म के ४१ वें दिन कुंभनदासजी द्वारा श्रीनाथजी के आगे शरण आए। वल्लभाचार्य के तिरोधानान्तर श्रीगुसाँईजी के व्रज में आने पर (सं. कल्पद्रुम के अनुसार सं. १५९७ में) चतुर्भुजदास को वैष्णव धर्म-दीक्षा में आत्मनिवेदन दीक्षा हुई–और काव्यमयी प्रतिभा का उद्गम हो जाने पर सं. १६०२ में 'अष्टछाप' में उनकी प्रतिष्ठा हुई, जब ही इनकी वय २०–२५ वर्ष की थी।

अष्टछाप में समावेश और कारण—

जैसा कि–प्रख्यात है सं. १६०२ में अष्टछाप की स्थापना करते हुए गो. श्री विट्ठलेशप्रभुचरण ने चतुर्भुजदास को भी उसमें स्थान प्रदान किया। 'अष्टसखा' और 'अष्टछाप' यह दो एकार्थवाची शब्द हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार–समकालिक उनके सखाओं की भावना पर* श्रीगोवर्द्धन-नाथजी के साथ भी सख्यभाव के अभिव्यंजक आठ सखा व्रज में संमिलित हुए। गो. श्रीद्वारकेशजी ने इस मान्यता का इस प्रकार उल्लेख किया है :—

* भागवत (द. स्कं. अ. २२/३१)

" सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानंद जानो,
कृष्णदास सो ऋषभ छीतस्वामी सुबल बखानो ।
अर्जुन कुंभनदास, चत्रभुजदास विशाला,
विष्णुदास सो भोज स्वामि गोविंद श्रीदामाला ॥
' अष्टछाप ' आठों सखा ' श्रीद्वारकेश परमान ।
जिनके कृत गुनगान करि निजजन होत सुथान ॥

' अष्टछाप के आठ कवि भक्त सखाओं में सूर, परमानन्द, कुम्भनदास और कृष्णदास यह चार जगद्गुरु श्रीवल्लभ महाप्रभु के और शेष चार–छीतस्वामी, गोविंददास, चतुर्भुजदास और नन्ददास उनके पुत्र साहित्य-संगीतकला–विशारद श्रीविट्ठलनाथ प्रभुचरण के शिष्य थे। एतावता प्रथम चार की गणना चौरासी में और बाकी चार ' दोसौ बावन ' वैष्णवों के अन्तर्गत हैं।

पुष्टिमार्गीय संयोग–विप्रयोग उभयदलात्मक भक्ति का विकास जगद्-हितार्थ एक क्षेमंकर परिणाम है। श्रीहरि की नामात्मक लीला का सैद्धान्तिक प्रचार श्रीमहाप्रभु का विशेष आयोजन है तो स्वरूपात्मक लीला का क्रिया-मय आयोजन श्रीप्रभुचरण की देन है। एक संयोग के संश्लिष्ट स्वरूप है तो दूसरे विप्रयोग के वपुष्मान् आदर्श। और यही कारण है कि–उभय के चार चार शिष्यों के सम्मिलित रूप में अष्टछाप की स्थापना की गई। जैसा कि, इनके पदों और वार्ता के प्रसंगों से विदित होता है। ८४ और २५२ दोनों प्रकार के शिष्यों में यही आठ भक्त वैष्णव ऐसे थे,–जो सख्यभाव की अनुभूति और अभिव्यक्ति में अपनी उपमा नहीं रखते थे। अप्राकृत गुण–भेद से आध्यात्मिकतया इनका विश्लेषण इस रूप में करने का साहस किया जा सकता है*।

(क) संयोगात्मक सख्यभक्ति में :–

(१) सूरदास—निर्गुण (गुणातीत) सखा भक्त.
(२) परमानन्ददास—सात्त्विक सखा भक्त.
(३) कुंभनदास—राजस सखा भक्त.
(४) कृष्णदास—तामस सखा भक्त..

} श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य

* किसी अन्य लेख में वार्ता के प्रसंगों और पदों के आधार पर इस पर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

(ख) वियोगात्मक सख्यभक्ति में :—

(५) नन्ददास—निर्गुण (गुणातीत) सखा भक्त (६) गोविन्ददास—सात्विक सखा भक्त (७) चतुर्भुजदास—राजस सखा भक्त (८) छीतस्वामी—तामस सखा भक्त	श्री विट्ठलेश के शिष्य

चतुर्भुजदास का जहां तक अष्टछाप से सम्बन्ध है, श्रीगोवर्द्धननाथजी के साथ उनके विनोदात्मक उल्लिखित दो चार प्रसंगों से उनकी सखाभक्ति पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है।

अष्टछाप में समावेश के लिये नवविधा भक्ति के अन्तर्गत सख्य भाव की अपेक्षा होती है। सख्य भावाभिव्यक्ति में काव्यमयी पदरचना और संगीत साधना की विशेष कारणता है तो तदर्थ सत्संग, शिक्षा एवं अनुभव की परिपक्वता भी उपादेय होती है—जो कम से कम कैशोर और तारुण्य की संधि में संभव है।

आत्मनिवेदन के समय चतुर्भुजदास की हावभाव चेष्टा से श्रीप्रभुचरण गुसांईजी को अत्यधिक आल्हाद हुआ और उन्होंने कुम्भनदास को सम्बोधित कर कहा :—" या पुत्र सो तुम कों बहोत ही सुख होयगो। तुम्हारे मन में जैसो मनोरथ है सोई सिद्ध होयगो। "

आगे चल कर विट्ठलेश प्रभुचरण का यह आशीर्वचन सफल हुआ—और जहाँ चतुर्भुजदास परम भगवदीय वैष्णव हुए वहाँ वे 'परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः' के प्रत्यक्ष उदाहरण भी सिद्ध हुए। कुंभनदास को उनसे जो सन्तोष हुआ—वह अन्य किसी सन्तान से नहीं। वे कृष्णदास और चतुर्भुजदास रूप डेढ़ पुत्र को पाकर कृतकृत्य हो प्रभु को धन्यवाद देने लगे।

पितृ—शिक्षा, भगवद्भक्तिमय संगीतात्मक चतुर्दिक् वातावरण, अहर्निश भगवत्प्रसंग—चर्चा, साधु—समागम, श्रीनाथजी की नित्य नवीन सेवा—प्रणाली एवं विविध मनोरथों के दर्शनोपरान्त श्रीप्रभुचरण के उपदेशामृत ने संस्कारी

बालक चतुर्भुजदास पर जो प्रभाव डाला था वह उनके लिये अमृतकल्प हो गया। स्वल्प वय में ही उन्होंने जो वीतरागिता, भक्ति-प्रवणता एवं लीला-सम्बन्धी तन्मयता अधिगत की वह बहुत कम अन्यत्र दृष्टिगोचर होती है। वे तपे हुए रससिद्ध लीला-प्रवीण भक्त सिद्ध हुए।

अष्टछाप के अन्य महानुभावी कविभक्तों की परमानन्द-दायिनी, संगीत लहरी देवरति—विषयिणी काव्यधारा, सदाचार-साधना से चतुर्भुजदास में एक ज्योतिर्मयी आभा प्रकट हुई जिससे स्वल्प वय होने पर भी उन्हें अष्टछाप में स्थान मिल सका-ये श्रीगोवर्द्धननाथजी के शृंगार के समय कीर्तन-सेवा के अन्यतम कीर्तनिया नियुक्त किये गए।

पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना और रहस्यलीला-चिन्तना में अपने पिता कुम्भनदासजी का सत्संग पाना इनका नित्यनियम था। पितापुत्र दोनों नित्य नई पद रचना कर प्रभुचरित्र-गुणगान और कथा में लीन रहते थे।

प्रस्तुत विषयक वार्ता के एक प्रसंग में कहा गया है :—

"और (एक समै) कुंभनदास और चतुर्भुजदास (जमनावता गाममें) अपने घर बैठे हते। सो अर्द्ध रात्रि के समै श्रीनाथजी के (मंदिर में) दीवा वरत देखे। तब कुंभनदास ने चतुर्भुजदास कों सुनाइ के कह्यो, जो :—

'वे देखि बरत झरोखें दीपकु हरि पौढे ऊंची चित्रसारी' [कुंभनदास प. सं. २९९]

इतनो कहिके चुप करि रहे। सो यह सुनिके चतुर्भुजदास ने कह्यो जो :—

"सुंदर वदन निहारन कारन राख्यौ है बहुत जतन करि प्यारी"

यह सुनिके कुंभनदास ने चतुर्भुजदास सों पूंछी-जो या लीलाकौ अनुभव तोकों भयों? तब चतुर्भुजदास ने कह्यो जो — श्रीगुसाँईजी की कृपा तें श्रीमहाप्रभुजी की कानि तें (यह लीला कौ अनुभव) श्रीनाथजी कृपा करिके जनाए हैं। तब कुंभनदास यह सुनि के बोहोत प्रसन्न भए"*

प्रस्तुत निदर्शन से चतुर्भुजदास की बाल्यकालीन काव्यशक्ति का सहज ही पता लग सकता है। विदित होता है कि, भगवल्लीलानुसन्धान में इन पर गुरुचरण श्रीगुसांइजी का प्रसाद पूर्णरूपेण प्रतिफलित हुआ था।

---

* अष्टछाप – चतुर्भुजदास की वार्ता पत्र ४७४ [कांक. प्रका.]

चतुर्भुजदास अपने पिता के समान ही त्यागीविरागी थे। यद्यपि विवाह जैसी गृहस्थी की झंझट इन्हें अभीष्ट नहीं थी, तथापि लोगों के आग्रह और सर्वोपरि भगवदाज्ञा से इन्हें परिणय करना पड़ा। राघवदास नामक इनके एक पुत्र हुआ– जो स्वयं अनुभवी भक्त और कवि था*। इनकी 'धमार' प्रसिद्ध है।

कुछ समय के बाद पत्नी के देहान्त से मरणाशौच के कारण चतुर्भुजदास को श्रीगोवर्द्धननाथजी के दर्शन–सेवा से वंचित होना पड़ा। पत्नी–वियोग की अपेक्षा प्रभु–वियोग में इन्हें जो शतशः अगणित मनस्ताप हुआ उसने इनकी हृदय की कोमल भावना पर आघात कर विप्रयोगावस्था के अनुभवजन्य विरह के पद गाने के लिए इन्हें विवश कर दिया। 'भोर भांवतो गिरिधर देखो' (पद सं. ३५२), 'श्यामसुंदर प्रान पियारे छिनु जिनि होहु निन्यारे' (पद सं. ३५१), गोपाल कौ मुखारविन्द जिय में विचारों' (पद सं. १८३) आदि पद समय की उनकी रचनाएं हैं, जो हृदय के मर्मस्थल का स्पर्श करती है। ×

इसी प्रकार श्रीनाथजी के (सं. १६२३ में) मथुरा पधार जाने पर मंदिर में उनके दर्शन न होने पर भी चतुर्भुजदास ने 'बालहि लग की कासों कहिए' (पद सं. २४४), 'गोवर्द्धनवासी सांवरे लाल तुम बिन रह्यौ न जाइ' (पद सं. २४६), 'तबतें जुग समान पलु जान' (पद सं. २४२)+ आदि पदों में उत्कण्ठा–मिश्रित विरहानुभूति का जो प्रत्यक्ष दर्शन कराया है, वह रससिद्ध कवि के सिवाय अन्य की सामर्थ्य के बाहर है। 'भगवत्सामुख्य' ही चतुर्भुजदास का जीवनलक्ष्य था। वे उसके बिना तिलमिला उठते थे।

पत्नी के गत हो जाने पर चतुर्भुजदास एकाकी विगतस्पृह उड़े उड़े–से रहने लगे। लौकिक जीवन की विरस बिधुर अवस्था उन्हें तो नहीं, पर उनके परमसखा श्रीगोवर्द्धननाथजी को अवश्य खटकी और दो–चार बार आज्ञा देकर उन्होंने सदू पांडे के द्वारा एक मुकद्दम की विधवा पुत्री के साथ चतुर्भुजदास का 'धरेजा' करवा दिया। श्रीगोवर्द्धननाथजी की प्रसन्नता को

* दोसौ बावन वै. वार्ता सं. २३४ पर इनकी वार्ता प्रसिद्ध है।

× अष्टछाप — चतुर्भुजदास वार्ता [कांक. प्रका.] पत्र ४९२

+ अष्टछाप चतुर्भुजदास वार्ता (कांक. प्रका.) पत्र ४९९

प्राथमिकता देकर उन्मुक्त हो जाने पर भी चतुर्भुजदास गृहस्थी के बन्धन में पुनः बंध गए। इस प्रकार उन्होंने 'स्व-तन्त्र' का 'पर-(उत्कृष्ट) तन्त्र' में विलय कर दिया।

इस प्रसंग को लेकर सख्यभाव में उनके साथ श्रीगोवर्द्धननाथजी हास्य-विनोद करते थे। वार्ता में लिखा है :—

"ता पाछे श्रीनाथजी चतुर्भुजदास की नित्यप्रति हाँसी करन लागे। जो – (यह) देखो, कुंभनदास सारिखे भगवदी कौ बेटा होइ के स्त्री मरि गई तासों (दोइ चार महिनाहू) न रह्यो गयो (सो तुरत) धरेजा कियो। सो या भाँति सों चतुर्भुजदास की हाँसी (श्री गोवर्द्धननाथजी) नित प्रति सखान सों करते। तब चतुर्भुजदास कों सुनि के लज्जा आवती। ऐसे करत एक दिन श्रीनाथजीने चतुर्भुजदास सों कही – देखे चतुर्भुजदासने काम के बस परि धरेजा कियो, परन्तु याके मन में संतोष न भयो। तब यह वचन चतुर्भुजदास पे सह्यो न गयो। तब चतुर्भुजदासने श्रीनाथजी सों कह्यो जो – मोकों तो तुम नित्य ही एसें कहत हो परन्तु आपहू तो व्रजवासीन के घर – घर डोलत हो। तब यह सुनि के श्रीनाथजी लज्जा पाए"*

इस प्रकार के कई मधुर उदाहरण चतुर्भुजदास के जीवन के अनुपम दृष्टिकोण हैं, जिनसे इनकी सख्यभक्ति का पता चलता है।

जैसा कि, प्रथम कहा जा चुका है– चतुर्भुजदास ने समय समय पर विविध लीला, उत्सव, भावना के पदों की रचना कर अपनी काव्य–प्रतिभा को पूर्णता कर लोक में धन्य हो गए। पृथक् किसी ग्रन्थ का उन्होंने निर्माण नहीं किया। यों तो सभी विषयों में चतुर्भुजदास की तलस्पर्शी प्रतिभा है। जीवन में विप्रयोग का कई बार अनुभव होने के परिणाम–स्वरूप उनके विरह के पदों में हृदय की जिस टीस का अनुभव होता है वह अनुपम है। ऐसे पद मर्म को छुए बिना नहीं रहते।

स्वकीय गुरुचरण श्रीविट्ठलनाथजी और आराध्यदेव श्रीनाथजी में चतुर्भुजदास को एकात्मभाव के दर्शन होते थे। प्रभुचरण का वियोग उनके जीवन की एक ऐसी रिक्तता थी, ऐसे अभाव का साक्षात्कार था, जिसकी

* अष्टछाप वार्ता – चतुर्भुजदास [कांक. प्रका. पत्र ४९५]

पूर्ति असंभव थी। ज्योंही (सं. १६४२ फा. कृ. ७) के दिन श्रीगुसांइजी के इहलीला-तिरोधान का उन्हें पता लगा, वे विरह-निमग्न हो गए। विषम विरह वेदनोत्पादक इस वृत्त को सुन कर वे 'आन्यौर' गाम से श्रीगोवर्द्धन आए। श्रीनाथजी के दर्शनोपरान्त उन्होंने कुछ विरह पद गाते हुएअप नी मानसिक वेदना को साकारता प्रदान कर तल्लीनता प्राप्त की।

इस समय अन्तर्गत विरहभाव – द्योतक जो पद उनके मुख से निकले, वार्ता के अनुसार उनकी प्रतीकें इस प्रकार हैं :—

(१) फिरि व्रज बसहु श्रीविट्ठलेस (पद सं. ६२)

(२) श्रीविट्ठलनाथ सौ प्रभु भयों न ह्वै है (पद सं. ६३)

द्वितीय पद का अन्तिम चरण :—"श्रीवल्लभ सुत दरसन कारन अब सब कोउ तपै है; 'चत्रुभुजदास' आप इतनी जो उहि सुमिरनु जनमु सिरै है" के उच्चारण के साथ ही रुद्रकुंड पर इमली वृक्ष के नीचे उनकी इह-लीला समाप्त हो गई। वे दिव्य यशःकलेवर पाकर भगवत्सख्य-भाव का साक्षात् अनुभव करने में जागरूक हो गए। 'अष्टछाप' से उनमें और उनसे अष्टछाप में ऐसी परिपूर्णता आई-जो हिन्दी साहित्य की अमर अप्रतीक निधि बनकर आज भी आदरणीय हो रही है। शम्

विजया १०
संवत् २०१४

पो० कण्ठमणि शास्त्री
संचालक-विद्याविभाग,
कांकरोली (राज.)

विषयानुक्रम

विषय	
सम्पादकीय किञ्चित्	१
जीवन झांकी...	११
(क) वर्षोत्सव पद (१ से १३५)	पद संख्या
(१) मंगलाचरण	१
(२) जन्म-समय	२-७
(३) पलना	८-१२
(४) छठी	१३
(५) राधाष्टमी	१४-१८
(६) दान-प्रसंग	१९-२७
(७) दशहरा	२८-३०
(८) रास	३१-३६
(९) दीपमालिका अन्नकूट	३७-३९
(१०) कानजगाई	४०
(११) दीपदान	४१
(१२) हटरी	४२
(१३) गोवर्द्धन-पूजा	४३-४७
(१४) गोवर्द्धनोद्धरण	४८
(१५) गोपाष्टमी	४९
(१६) प्रबोधिनी	५०-५२
(१७) श्रीवल्लभ-वंशोद्गान	५३-६८
(१८) वसंत	६९-९७
(१९) डोल	९८
(२०) फूलमंडनी	९९-१०४
(२१) आचार्यजी की बधाई	१०५
(२२) अक्षयतृतीया (चंदन)	१०६-१०९
(२३) रथ-प्रसंग	११०-१११
(२४) पावस-वर्णन	११२-११६

विषय	पद संख्या
(२५) हिंडोरा	११७-१३१
(२६) पवित्रा	१३२-१३३
(२७) राखी	१३४-१३५
(ख) लीला पद (१३६ से ३५०)	
(२८) जगावनौ	१३६-१३७
(२९) मंगला (कलेऊ)	१३८-१४३
(३०) बाल-लीला	१४४-१४९
(३१) उराहनौ	१५०-१५४
(३२) मिषान्तर दर्शन	१५५-१६०
(३३) वनगमन	१६१
(३४) वनक्रीडा	१६२-१६४
(३५) छाक	१६५-१७१
(३६) वेणुगान	१७२-१८०
(३७) स्वरूप-वर्णन	
श्रीप्रभुकौ—	१८१-१९५
श्रीस्वामिनीजी—	१९६-२०३
युगल स्वरूप—	२०४-२१४
(३८) आवनी	२१५-२२६
(३९) आसक्ति	२२७-२७२
(४०) गोदोहन	२७३-२८२
(४१) व्यारू	२८३
(४२) आरती	२८४-२८६
(४३) मान	२८७-३१९
(४४) युगल रस-वर्णन	३२०-३२४
(४५) सुरतान्त	३२५-३३७
(४६) वञ्चिता (खण्डिता)	३३८-३४६
(४७) उद्धव-संदेश	३४७-३५०

(ग) प्रकीर्ण—पद (३५१ से ३६५)

(४८) भक्तनि की प्रार्थना ३५१-३५४

(४९) यमुनाजी ३५५-३५९

परिशिष्ट (१) (२) ३६०-३६५

शुद्धिपत्रक पत्र १७६

पदप्रतीक-अनुक्रमणिका ,, १७९

" चतुर्भुजदास "

वर्षोत्सव

मंगलाचरण—

१

[कल्यान

जयति जयति श्रीगोवर्द्धन—उद्धरन—धीरे ।
वृष्टि—टूटन करन व्रज—कुल मैं हरन—
देवपति—गर्व, साँवल सरीरे ॥
जयति वारिज वदन, रूप लावनि—सदन
सिर सिखंड, कटि पट जु पीरे ।
मुरली कल गान, व्रज जुवति मन आकरन
संग बहत सुभग जमुना—तीरे ॥
जयति रस रास सो विलास वृन्दाविपिन
कलिय सुख—पुंज मय मलय समीरे ॥
' चतुर्भुजदास ' गोपाल नट—भेप सोई
राधिका कंठ सब गुन गँभीरे ॥

जन्म-समय-

२

[देवगंधार

नैन भरि देखहु नंदकुमार ।
जसोमति कूख चंद्रमा प्रगट्यो या ब्रज कौ उजियार ॥

बन जिनि जाइ आज कोउ गोसुत औरु गांइ ग्वारु ।
अपनें अपनें भेष सबै धरि लावहु बिबिध सिंगारु ॥

हरद दूब अच्छित दधि कुंकुम मंडित करहु द्वार ।
पूरहु चौक बिबिध मुगतामनि गावहु मंगलचारु ॥

करत वेद धुनि सबै महामुनि होत नच्छित्र बिचारु ।
ऊग्यौ पुन्य को पुंज सांवरौ सकल सिद्धि दातारु ॥

गोकुलबधू निरखि आनंदित सुंदरता की सारु ।
'दास चत्रुभुज' प्रभु चिरजीवहु गिरिधर प्रान आधार ॥

३

[सारंग

आजु बधाई माँगत ग्वाल ।

बाजत तूर होत कौतूहल प्रगटे मदन गोपाल ॥
गृह-गृह तें सब आवतिं गावतिं भरि-भरि मोतिनि थार ॥
कंचन कलस चरचि केसरि के, बाँधतिं वंदनवार ॥
'चत्रुभुजदास' पावै न्यौछावरि उर गज मोतिनि हार ॥

४

[मलार

नंद-घर होत बधाई आज ।
जसोमति जनम-पत्रिका पाई भक्तनि कौ सुखराज ॥
गोपीग्वाल करत कौतूहल निरखत नंद कुमार ।
कनक-थार लियें व्रज-सुंदरी गावति मंगलचार ॥
नंद जु दान दियो बहुबिधि सों सरे विप्रनि के काज ।
'चत्रुभुज' प्रभु कौ मुख निरखत ही वृष्टि करत सुरराज ॥

५

[धनाश्री

प्रथम प्रनाम व्रज सीस असीस लीजै जु ।
किये परम उपकार बधैयाँ दीजै जु ॥
पुत्र तिहारे कौ हौं गाहक भूत भविस वर्तमान ।
जब-जब औसर आइ रहूँ फुनि द्वार न जाँचों आन ॥
सोते में सपनौ पायो मैं देख्यो अद्भुत रूप ।
जदुकुल-तिलक प्रगट प्रभु गोकुल, नंद-महरि घर पूत ॥
वदि भादौं आयो जुग द्वापर अर्ध राति बुधवार ।
बालव करन[1] अरु नछित्र रोहिनी जनमे जगदाधार ॥
द्वादस लगुन सुभग नवग्रह उदित आपत मित देखि ।
आगम सुगम प्रमान कर गर्ग लिखी जन मन जु लेखि ॥

---

१ कैल वचन (पाठ) ? है

जिन जान्यो मानस बलि भैया देवन ही कौ देव।
कौन पुन्य अहीर अपरिमित पूरव कर्मनि खेव।

गोप वधू घर-घर तें आवें लै लै मंगल साज।
कुसुम बँधावौ कृखि महरि की कनक पुरुष व्रजराज॥

हय, गज, धेनु, अरथ, अंबर, धन दीन्हे धन भंडार।
मैं ढाढी न अघाऊँ कबहूँ नंद जदपि दातार॥

तब हँसि कह्यो नृपति गोकुल के कहा जाचक मन कीन्ह।
हारत हाथ व नाहीं न करिहैं संक न सरबसु दीन्ह॥

जग में या ढिग जाइ रह्यो जो परदा की रहे ओट।
हिय नारी व हेरत जहाँ तहाँ करि आऊँ तन लोट॥

धनि जीयो सुखराज पुन्य तिहि जनमन-पूरन आस।
जनम-जनम गुन गावहीं हरि वारत 'चत्रुभुजदास' बधैयाँ दीजेजु॥

६

[कानरा

रावल[1] के कहें गोप, आज व्रज दूनी ओप।
काननि दै दै सुनौ बाजे गोकुल में मँदिलरा॥

जसोदा कें सुत जायो, वृषभानु सचु पायो।
जहाँ तहाँ लै लै धाए दूध-दधि-गगरा॥

आगे गोप वृंद वर पाछें त्रीय मनोहर
चल निकसे कोउ पावत न डगरा।

---

१ रावरे

'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधारी कौ जनमु भयौ
फूल्यो फूल्यो फिरै जहाँ नारद-सो भँवरा* ॥

७

[काफी

हौं ढाढिनि व्रजराज की व्रज तें आई हो ।
सुनि जायो जसोमति पूत सु धाम तें धाई हो ॥

सुंदर रूप अनूप सबै मन भाई हो ।
मानों इंद्र अखारे तें आपु पठाई हो ॥

मंदिर में लई जहाँ नंदरानी हो ।
सीस नवाइ असीस दै बंस बखानी हो ॥

बाजत ताल मृदंग उपंग जु बाँसुरी ।
अंबुज नैन बिसाल सु गावत बाँसुरी ॥

निर्तत ताथेइ ताथेइ लियें गति गोहनी ।
नंद के आँगन में मानों निर्तत मोहिनी ॥

रीझि जसोमति रानी सबै बिधि सुंदरी ।
दिये कुंडल हार दई कर मुंदरी ॥

दीनी नई नकबेसरि बेंदी जराउ की ।
दीनी है कंचन जेहरि पंकज पांउ की ॥

दीन्ही है सारी सोंधें भींजी कंचुकी नेह की ।
कीन्ही है मालिनि ढाल सुढाढिनि गेह की ॥

ढाढी गयंद लदाइ चल्यो चित चाडिलौ ।
चिर जीयो 'चत्रुभुज' कौ प्रभु गिरिधर लाडिलौ ॥

पलना—

८

[रामकली

अपनें बाल गोपाल रानी पालनें झुलावै ।
बारंबार निहारि कमलमुख प्रमुदित मंगल गावै ॥

लटकन भाल भृकुटि मसि बिंदुका कठुला कंठ सुहावै ।
देखि देखि मुसिकाइ साँवरौ, द्वै दँतियाँ दरसावै ॥

कबहुँक सुरंग खिलौनां लै लै नाना भाँति खिलावै ।
सद्य माखन मधु सानि अधिक रुचि अंगुरिनि कै कै चखावै ॥

सादर कुमुद चकोर जु नैननि रूप सुधा रस प्यावै ।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधनचंद कौं हँसि हँसि कंठ लगावै ॥

९

[रामकली

साँवरौ सुख पलना झूलै ।
निरखि निरखि जसोमति मन फूलै ॥
नैन बिसाल भृकुटि मसि राजै ।
निरखि बदन उडुपति अति लाजै ॥
कठुला कंठ रुचिर पोंहोंची कर ।
सुभग कपोल नाक बिंबाधर ॥
भाल तिलक लट लटकनु सोहै ।
मंद हँसनि सबकौ मनु मोहै ॥

माँखन मिसरी मेलि चखावति ।
बार बार प्रमुदित उर लावति ॥
गिरिधर कुँवर जननि दुलरावै ।
'चत्रुभुजदास' बिमल जसु गावै ॥

१०

[रामकली

झूलौ पालनें गोविंद ।
दधि मथौं नवनीत काढौं तुमकौं आनँदकंद ॥
कंठ कठुला ललित लटकन भ्रकुटि मन कौ फंद ।
निरखि छबि छिनु छिनु झुलाऊँ गाऊँ लीला छंद ॥
द्वै दूध की दँतियाँ सुख की निधि हँसत जबै कछु मंद ।
'चत्रुभुज' प्रभु जननी बलि गिरिधरन गोकुलचंद ॥

११

पालना झूलत सुंदर स्याम ।
रतन जटित कंचन कौ पलना झुलवत हैं व्रजबाम ॥
गजमोतिनि के झूमका बाँधे मोहें कोटिन काम ।
'चत्रुभुजदास' प्रभु गिरिधरनलाल के चरन
कमल बिसराम ॥

१२

[धनाश्री

ललित ललाट लट लटकनु लटकनु
लाडिले ललन कों लडावै लोल ललना ॥
प्रान प्यारे प्रीति प्रतिपालति परम रुचि
पल पल पेखति पौढाइ प्रेम पलना ॥
दरपनु देखि देखि दँतियाँ द्वै दूध की
दिखावति है दामिनी सी दामोदर दुख दलना ॥
सरोज सो सलोनौ सिसु स्यामघन से जलधर
'चत्रुभुजदास' बिनु देखे परै कल ना ॥

छठी—

१३

[सारंग

आजु छठी छबीले लाल की ।
उबटि न्हवाइ भूषन बसन दिए सुंदर स्याम तमाल की ॥
केसर चंदन आरति बारति मोहन मदनगोपाल की ।
'चत्रुभुज' प्रभु सुखसिंधु बढावत गिरि गोवर्धनलाल की ॥

राधाष्टमी [बधाई]

१४

[सारंग

आनँद भवन वृषभान कें ।
जाई सुता माई कीरति घर ऐसी कुँवरि नहिं आन कें ॥
नहिं कमला, नहिं सची, नहीं रति सुंदर रूप समान कें ।
'चत्रुभुज' प्रभु हुलसीं ब्रज वनिता राधा मोहन जानिकें ॥

१५

[मालश्री

आजु महामंगल निधि माई ।
मनमोहन आनँदनिधि प्रगटी श्रीराधा सुखदाई ॥

सब स्रुतियन की संपति आई ब्रज जुवती मन भाई ।
हरषि हरषि नाचत सब ब्रजजन बाँटत विबिध बधाई ॥

पंच सबद बाजे बाजत धुनि दिसनि दिसनि हरि छाई ।
नंद जसोमति सब सुख राच्यो फूले कुँवर कन्हाई ॥
सुरविमान छायो नभ जै जै कुसुमावलि बरसाई ।
'चत्रुभुजदास' लाल मन बांछित फल परिपूरनताई ॥

१६

[मारू

हो ! बृषभानु बधाई दीजै ।
जाचक जन की बिदा भई, इक ठाडौ ढाढी छीजै ॥

कुँवरी जनम तिहारें सुनिकें हौं उठि धायो बेग ।
कोटि कलप लौं कौ छल छूट्यो, गयो आजु उद्वेग ॥

बैरी विरह बहुत दुख दीनों कीनों छाती छेग ।
तातें मदमात्यो नहिं हार्‌यो पर्‌यो जु तेरी तेग ॥

यह अब सिव विरंचि नहिं जानत मानत अमर अथाई ।
चंद सूरज नटवा ज्यों नाचत पंचम दहे की माई ॥

उपमा नाहिं करी कोउ कत्ता का सों कहौं समताई ।
कौन पुन्य गिरिधर ताके बस, तिहारें सुता कहाई ॥

धेनु धान धन अंबर दाता गोपनि में बड भाग ।
जो संबंध रच्यो मन ही मन अपनौ सो अनुराग ॥

दै जु सकोगे टरी कछू नहीं बात बनाऊँ ताग ।
राचौं नहीं कनक मुक्ता नग लैहौं कछु मो लाग ॥

हरषि कहति महरि मुसिकानी जो चाहौ सो लीजै ।
देत असीस धनि यह जीयो दे करि प्रान पतीजै ॥

दुलही दूल्है नंद घर ढोटा ब्याह बडे करि लीजै ।
मंडप चौंरी मंगल गावत दास 'चत्रुभुज' जीजै ॥

१७

[देवगंधार

रावलि राधा प्रगट भई ।
श्रीवृषभान गोप गरुवे कुल प्रगटी अति आनंद भई ॥

रूपरासि रसगसि रसिकिनी नव अंकुर अनुराग नई ।
चिरजीवहु चतुर चिंतामनि प्रगटी जोरी अति पुन्यमई ॥

गुननिधान अति रूप नागरी[1] करत ध्यान गिरिधरन सही ।
'चत्रुभुज' प्रभु अद्भुत यह जोरी सुंदर त्रिभुवन
सोभा नहिं जात कही ॥

---

१ रसिकिनी.

१८

[मालश्री

सब मिलि मंगल गावौ ।
श्रीवृषभान उदार विदित जग ताके सदन बधावौ ॥
बंदौं चरन महरि कीरति के संपति बहुत लुटावौ ।
'चत्रुभुज'प्रभु हित रूप स्वामिनी निरखत नैन सिरावौ ॥

दान–प्रसंग–

१९

[देवगंधार

मटुकी मेरी मोहनु दीजै ।
जो कछु दधि चाखन चाहत हो तौ रंच पात करि लीजै ॥
ऊने आइ घन अटके भोर ही तें बन तन नौतन सारी भीजै ।
रंगु बहै संग जैहै, निपट अवार व्है है कहा कहिए घर कौ कोऊ खीजै ॥
' चत्रुभुज 'प्रभु काल्हि आइहौं सबारी बार,
कहौं निरधार साँची बात पतीजै ।
गिरिधरलाल भयो प्रगट दान तुम्हारी नाहीं कोऊ व्रज
आन आजु अति हठु न कीजे ॥

२०

[देवगंधार

कहो किनि कीनों दान दही कौ ।
सदा सर्वदा बेचति इहिं व्रज है मारग नित ही कौ ॥

भाजन हीन समेट सिरनि तें लेत छीनि सब ही कौ ।
बहुर्यौं कबहूँ भयो न देख्यो नयो न्याउ अब ही कौ ॥
कमल नैन मुसक्याइ मंद हँसि अंचर पकर्‌यो जब ही कौ ।
दास 'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर मनु चोरि लियो तब ही कौ ॥

२१

[सारंग

सवारें ह्याँ ई आइहौं ।
बाबा की सौं अबहि जाइ घर दधि भली विधि जमाइहौं ॥
रुचि दाइक गोपाल हि लाइक नीकी जुगति बनाइहौं ।
भरि मटुकिया कनक की सिर धरि स्यामसुंदर कों ल्याइहौं ॥
होति अबार 'चत्रुभुज' प्रभु मोहि बहुरि घोष कब जाइहौं ।
गिरिधरलाल सकुच तें अंचर नाहिंन सकति छिडाइहौं ॥

२२

[सारंग

बलि गई नंद के लला ।
दूरि जाति सब सखी संग की छाडि देहु अंचला ॥
जान देहु घर लाइहौं काल्हि भोर भरी मटुला ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन अवारी बन क्यों रहै अकेली अबला ॥

२३

[नटनारायण

दान माँगत ही में आन कछु कियो ।
आइ गहि मटुकिया धाइ लई सीस तें

रसिक वर नंदसुत रंच दधि पियो ॥

भूलि गयो झगरौ हठु मंद मुसकानि में
जबहि कर कमल सों परस्यो मेरौ हियो ।
'चत्रभुजदास' नैननि सों नैना मिले
तबहिं गिरिराजधर चोरि चितु लियो

२४

[गौरी

आजु सखी तोहिं लागी इहै रट ।
गोविंद लेहु लेहु कोउ गोविंद कहति फिरति बन में घट औघट ॥
दधि कौ नांउ बिसरि गयो देखत स्याम सुंदर ओढे सुभग पीतपट ।
माँगत दान ठगौरी मेली 'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर नागर नट ॥

२५

[बिलावल

काहू की तू न मानें नाहीं कौन कौ है छोरा ?
आइ झपटिके गागरि पटकी मेरी,
सुरख चुनरिया भिजोई तेरौ भींज्यो पिछोरा ॥
ऐसी विद्या कौन सिखाई
नित इठलात करो प्यारी सों निहोरा ।
कपटी छली महारस भोगी
जानत बड सर वोरा ॥

ले कर बसन धरत अपने कर
कदम चढी इक ठोरा।
'दास चत्रुभुज' प्रभु की लीला
माँगत पदरज मूर दोउ कर जोरा॥

२६

[धनाश्री

छाँडि देहु यह बानि प्यारे कमल नयन मनमोहना।
आवत जात सदा रही कबहुँ न देखी रीति।
अनहोनी स्रवननि सुनी कैसे होइ प्रतीति॥
गिरिघटिया उठि भोर ही मारग रोकत आइ।
बहुरि अचानक सीस तें मटुकी देत ढुराइ॥
ऐसी तुमहि न बूझिए अटकि रहत गहि बाँहि।
मात पिता भैया सुनें साँझ परत बन माँहि॥
हँसत ही में मन मुसत हो कहि कहि मीठे बोल।
सेंत मेंत क्यों पाइए यह गोरस निरमोल॥
'चत्रुभुज' प्रभु चित करषियो चितवन नैन बिसाल।
रति जोरी मिस दान के गिरि गोवर्धनलाल॥

२७

[आसावरी

दूरि तें आवत देखे दानघाटि
घिरि रहे दुरि रहे दुहुँ ओर सिला की सहाई।

जब ही छत्र नीकौ आंई फूलन भरो
दधि की बौरी नी
सो ऐसे में ओंचका आइ सबै झुकाई ॥

स्यामा रंग रंग नारी नैन हैं कुरंगिनी
री रही है ठठके आग्यो लयो लली तांई ।
कीन्हो है बत कहाउ कहा हो कहत स्याम
हमें काम, जान देहु
ऐसी अब ही तें क्यों करत बरिआई ॥

इतकों सुबल उत तोष पाछें श्रीदामा
राखे हैं नाकेन परभारि आँखि बाँई ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधरन रसिक वर
कर गहें कर लयो है छिडाइ बेनु वेत्र लपटाई ॥

दशहरा—

२८

[नट

आजु दसहरा सुभ दिन आयो ।
स्यामसुंदर सिर धरें जवारे कुंकुम तिलकु बनायो ॥
कनकथार कर लिएँ आरती ब्रजभामिनि मिलि मंगल गायौ ।
'चत्रुभुजदास' मुदित नँदरानी गिरिधरलाल लाड लडायो ॥

२९

[सारंग

विजया दसमी सुभ मंगल दिन
धरत जवारे श्री गिरिधारी ।
कुंकुम अक्षत कौ करि टीकौ
हाथन लेत कंचन की थारी ॥
आरति करति देति न्यौछावर
मंगल गावति सब ब्रजनारी ।
देति असीस स्यामसुंदर कों
'चत्रुभुजदास' जाय बलिहारी ॥

३०

[सारंग

जवारे पहिरें श्री गोवर्धननाथ ।
सुंदर मुखनि रखत सुख उपजत ब्रजजन किये सनाथ ॥

स्वेत जरी सिर पाग लटकि रही कलँगी तामें लाल ।
तनसुख कौ बागौ अति राजत कुंडल झलकें रसाल ॥

अंग अंग छबि कहाँ लौ बरनों नाहिन बरन्यो जात ।
'चत्रुभुज' प्रभु गिरिधर छबि निरखत आनँद उर न समात ॥

रास—

३१

[भैरव

प्यारी ग्रीवाँ भुज मेलि निर्तत पीउ सुजान ।

मुदित परस्पर लेत गति में गति
गुनरासि राधे गिरिधरन गुननिधान ॥

सरस मुरलि धुनि मिले मधुर सुर
रास रंग भीने गावें औधर तान बंधान ।

'चत्रुभुज' प्रभु स्याम स्यामा की नटनि देखि
मोहे खग मृग वन थकित व्योम विमान ॥

३२

[आसावरी

ललित गावत रसिक नंदसुत भामिनी ।

सुभग मरकत स्याम मकर कुंडल बाम
कनक रुचि सुचि बसन लजित घन दामिनी ॥

रुचिर कुंज कुटीर तरनितनया तीर
रटत कोकिल कीर सरद ससि जामिनी ।

मुखर मधुकर निकर मिले मृदु सप्त सुर
अधर पल्लव कुनित मुरलि अभिरामिनी ॥

लाल गिरिवरधरन मानिनी मनहरन
तोहि बोलत प्रिया हंसकुलगामिनी ।

चलहु सत्वर गर्ति भजहु 'चत्रुभुज' पर्ति
सुंदरी ! कुरु रर्ति राधिके नामिनी ॥

३३

[मालवगौरा

साजें नटवर-भेख गोपाल ।
मधुर बेनु सु सद्ध उघटत तत्त थेई थेई ताल ॥
तरनि-तनया-तीर मरकत मनि जु स्याम तमाल ।
ब्रज की नारि-समूह मंडल बनी कंचन-माल ॥
रास-रस-गति निरखि उडपति तजी पच्छिम चाल ।
'चत्रुभुज' प्रभु देव-गन-मन हर्‌यो गिरिधरलाल ॥

३४

[मालवगौरा

मदन गोपाल रास-मंडल में मालव राग रस भर्‌यो गावै ।
औधर तान बंधान सप्त सुर मधुर-मधुर मुरलिका बजावै ॥
निर्तत सुलप लेत नूपुर सच बहु विधि हस्तक भेद दिखावै ।
उघटत सद्ध तत्त थेई तत्त थेई जुवति-वृंद मन मोद बढावै ॥
थक्यो चंद मोहे खग मृग गन प्रति छिनु अमित आन गति लावै ।
'चत्रुभुज'प्रभु गिरिधर नट नागर सुर नर मुनि गति मति बिसरावै ।

३५

[केदारौ

रिझये सखि ! तें साँवरौ सुजान-राइ ।
तान बंधान अनूपम बिधि सों मधुर ताल सुर सुघर गाइ ॥
राखे प्रेम-प्रमोधि प्रानपति गूढ भेद नैननि जनाइ ।
उघटति सद्ध संगीत स्वामिनी निर्तति पग नूपुर बजाइ ॥
रास-रंग-हरि-संग रसु राख्यो अंग-अंग गुन बहुत भाइ ।
'चत्रुभुज' दास प्रभु गोवर्द्धनधर लेत रहसि हँसि कंठ लाइ ॥